फरवरी १९९९ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

धारण करे तो धर्म

काम स्वयं करना होगा

(जी-टीवी पर चौवालीस कड़ियों में प्रसारित पूज्य गुरुजी के प्रवचनों की **सातवीं** कड़ी)

किसी तपोभूमि में जाकर विपश्यना सीखने वाले को यह बात बहुत अच्छी तरह समझ लेनी होती है कि पहला कदम जो उठा रहे हैं वह अपने सांस के बारे में जो सच्चाई है। उसे साक्षीभाव से, तटस्थभाव से जानने का काम कर रहे हैं। इसके साथ कहीं भूल कर भी कोई शब्द न जुड़ जाय। चित्त को एकाग्र करना हो तो किसी भी शब्द को बार-बार, बार-बार दोहराते-दोहराते मन एकदम समाहित हो जायगा। अच्छा भी लगेगा, शांत हो गया। लेकिन भीतर विकारों का संग्रह वैसे ही धधक रहा है। ये सुषुप्त ज्वालामुखियां कभी भी विस्फोटित होंगी और उसी प्रकार हम विकार ग्रस्त हो जायेंगे, उसी प्रकार दुःखों से उलझने लगेंगे। जिन्हें जड़ों से अपने विकार निकालने हैं, उनको किसी शब्द का प्रयोग नहीं करना है। अन्य प्रकार की साधनाओं में शब्द का अपना लाभ है। लेकिन जड़ों तक जाकर विकार निकालने में इसका कोई उपयोग नहीं, बल्कि यह बाधक भी हो सकता है।

चित्त ही एकाग्र करना हो तो किसी शब्द को दोहराये जा रहे हैं दोहराये जा रहे हैं, जैसे मां अपने बच्चे को लोरी गा के सुलाना चाहती है – "राजा बेटा सो जा, राजा बेटा सो जा" – बार-बार, बार-बार दोहराती है। वह बच्चा सचमुच सो जाता है। ऐसे ही हमारे मन को हम किसी शब्द की लोरी देनी शुरू करेंगे तो लोरी सुनते-सुनते उसी पर एकाग्र तो हो जायगा, पर यह शब्द हमें आगे बढ़ने में, अपने बारे में सच्चाई का अनुसंधान करने में बाधक बन गया।

शब्दों की साधना का अनुभव स्वयं करने के कारण इस बाधा को मैं खूब समझता हूं। अन्य लोगों को भी जो बाधाएं आयी हैं, उनके अनुभव सुनता हूं तो यह बात और पुष्ट होती है। अपने यहां का एक महान संत, संत कबीर कहता है इसी बात को –शब्द का सहारा लेते-लेते भीतर से एक गूंज जागने लगती है जिसे 'अजपा जाप' कहते थे। गूँज का एक तार बँध गया। अरे, वह तार ही बाधक हो गया। भीतर के अंतरिक्ष का अनुसंधान करना है ताकि शरीर और चित्त के परे की उस अवस्था का साक्षात्कार हो जाय, जो परम सत्य की अवस्था है। तो संत कहता है, अरे वह तागा था, जो तार था, वही बाधक बन गया। तो कहता है –

"तागा टूटा, नभ में विनसगा, सबद जु कहां समायी रे।"

यह जो एक तार था, यह भी टूट गया। वह तार भी नहीं रह सकता उस अंतरिक्ष में। शब्द तो उससे बहुत स्थूल है, कहां से रहेगा! समझना चाहिए – हमें कोई ऐसा माध्यम, कोई ऐसा आलंबन नहीं पकड़ लेना चाहिए जो कि आगे जाकर हमारे लिए बाधक बन जाय। हमें एक वैज्ञानिक की तरह अपने शरीर और चित्त स्कंध के बारे में जो सच्चाई है और इन दोनों का जो पारस्परिक संबंध है, उसके बारे में, विकारों की उत्पत्ति के बारे में, विकारों के संवर्धन के बारे में और उनके निष्कासन के बारे में जो बातें हमें अपनी अनुभूति से जाननी है, उसमें यह सब कहीं बाधक न बन जाय। जैसा है, वैसा है। बस, इतना ही जानें। जैसा है, वैसा है। तो आगे, आगे बढ़ते चले जायेंगे। सांस का संबंध हमारे शरीर से भी है, सांस का संबंध हमारे चित्त से भी है। इन दोनों के बारे में सच्चाइयां प्रकट होती जायेंगी, प्रकट होती जायेंगी।

आरंभिक कठिनाइयां होंगी ही। चित्त को केवल एकाग्र करना होता तो इन कठिनाइयों से बच जाते। लेकिन हमें चित्त की गहराइयों से विकारों का निष्कासन करना है। अतः इन कठिनाइयों में से गुजरना पड़ेगा। जंगली मन है। इतना चंचल है, इतना चपल है। केवल ऊपरी-ऊपरी मन नहीं, गहराइयों तक कितना चंचल है, कितना चपल है। बंदर की तरह यह मर्कट-मन पेड़ की एक शाखा छोड़ता है, दूसरी पकड़ता है। एक छोड़ता है तो दूसरी पकड़ता है। कितना बेचैन है। भीतर तक कितना अशांत है। कितना व्याकुल है। इसे अपने वश में करना है। जंगली है। तो बड़े धीरज से, बड़े धीरज से काम करना होता है।

जैसे कोई जंगली जानवर हो और उसे पालतू बनाना है। कोई जंगली भैंसा है कि कोई जंगली हाथी है। समझदार अनुभवी आदमी जब उसे वश में करने का काम करता है तो बड़े धीरज के साथ, बड़े धीरज के साथ और निरंतरता के साथ काम करता है। घर बैठे वह निरंतरता नहीं आयेगी और धीरज भी नहीं रह पायेगा, क्योंकि वहां कोई मार्गदर्शक नहीं। तो ऐसी तपोभूमियों में आकर जब काम करेंगे, जहां परिस्थितियां ऐसी होंगी कि काम किये जा रहे हैं, किये जा रहे हैं। बाधाएं आ रही हैं, फिर भी प्रयत्न किये जा रहे हैं। बाधाएं आ रही हैं, प्रयत्न किये जा रहे हैं। यों करते-करते मन को पालतू बनाना शुरू कर देंगे। तो कहा, जैसे जंगली भैंसे को पालतू बनाने वाला व्यक्ति, जंगली हाथी को पालतू बनाने वाला व्यक्ति बड़े धीरज से काम करता है और किये ही जाता है, किये ही जाता है। तब सफलता मिलती है। क्योंकि काम शुरू करते ही जंगली पशु पालतू नहीं हो जाता।

काम शुरू करते ही हमारा मन एकदम एकाग्र हो गया और विकारों से विहीन हो गया, ऐसा नहीं हो सकता। बार-बार मन भटकेगा और भटकेगा तो राग-रंजित होगा, द्वेष-दूषित होगा। यदि साधक इस बात को लेकर और व्याकुल होता जायगा कि अरे, मेरा कैसा मन, कितना राग-रंजित है, कितना द्वेष-दूषित है! यह वर्तमान में तो टिकता ही नहीं! हमारे मार्गदर्शक कहते हैं, वर्तमान में जीना है और यह तो वर्तमान में जीता ही नहीं। व्याकुल ही व्याकुल, व्याकुल ही व्याकुल। अरे, तो समता खो देगा ना! संतुलन खो देगा ना! धीरज खो देगा तो कैसे काम होगा? बड़े धीरज के साथ काम करना होगा।

भटकता है तो स्वीकार करते हैं, भटक गया। रागरंजित होता है तो स्वीकार करते हैं रागरंजित हो गया। इस क्षण रागरंजित है।

इस क्षण द्वेषदूषित है। यों साक्षीभाव से, तटस्थ भाव से जैसा है, वैसा है, उसे जान रहे हैं। केवल द्रष्टाभाव, साक्षीभाव। भोक्ताभाव बिल्कुल नहीं। भोक्ताभाव और कर्ताभाव के बाहर निकलकर के याने कर्ता भी नहीं, भोक्ता भी नहीं; केवल द्रष्टा। केवल देख रहा हूं, जान रहा हूं। शरीर और चित्त को लेकर यह घटना घटी और जान रहा हूं, देख रहा हूं –यहां से काम शुरू होता है। बहुत आगे की अवस्थाएं तो ऐसी आयेंगी कि जहां यह 'हूं' भी निकल जायगा। 'मैं' भी निकल जायगा। जाना जा रहा है, देखा जा रहा है। घटना घट रही है और देखा जा रहा है, जाना जा रहा है। द्रष्टा भी समाप्त। 'द्रष्टा दृशीमात्र'।

विपश्यना का बड़ा प्रभाव है तभी पातंजलि कहता है –'द्रष्टा दृशीमात्र'। केवल दर्शन रह गया तो चित्त विशुद्ध हुआ। पर अभी जड़ों तक नहीं हुआ। काफी शुद्ध हो गया तो भी **"विशुद्धोपि प्रत्ययानुपश्यः"** अभी विपश्यना जारी रखनी है। यह आगे की अवस्थाएं हैं। प्रत्यय क्या है? इस अवस्था का भी प्रत्यय क्या है? कारण क्या है? एक वैज्ञानिक की तरह अनुसंधान करना है। तो किसी तरह का लेप नहीं लगने देंगे। यथाभूत, जैसा है, वैसा है। उसको देखते जायेंगे, देखते जायेंगे। बाधाएं आ रही हैं, उन बाधाओं को भी द्रष्टाभाव से देख रहे हैं, साक्षीभाव से देख रहे हैं।

आगे जाकर के जब यह द्रष्टाभाव, साक्षीभाव भी समाप्त हो जाय तब केवल दर्शन, केवल ज्ञान, केवल दर्शन, केवल ज्ञान रह जाय। केवल जानना है और समझना है, केवल जानना है और समझना है। यह केवल दर्शन, केवल ज्ञान –यही तो सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान है। यही कैवल्य ज्ञान तक पहुँचा देता है।

आरंभ में तो हजार कठिनाइयों के बीच में से गुजरना पड़ता है। जंगली हाथी, उसे वश में करना है। जंगली भैंसा, उसे वश में करना है, पालतू बनाना है। तो बड़े धीरज के साथ काम करते-करते वही जंगली भैंसा, वही जंगली हाथी जब पालतू बन गया तो हमारा बहुत बड़ा सेवक बन गया। जब तक जंगली था और उसने मनुष्य समाज में प्रवेश किया तो तहलका मचा दिया। कितनी बड़ी हानि की। लेकिन वही जब पालतू बन गया तो उस जंगली भैंसे का सारा बल, उस हाथी का सारा बल हमारी सेवा में लग गया। हम उसका उपयोग करने लगे।

ठीक इसी प्रकार, यह जंगली मन, इसे पालतू बनाना है। पालतू बन जायगा तो इसका बल, अरे, मन के बल का क्या कहना! हजार हाथियों के बल से भी ज्यादा बलवान। हानि करता है तो हजार हाथियों के बल से भी ज्यादा हानि करता है और यही जब पालतू बन जायगा तो उतनी ही बड़ी सेवा करने लगेगा। उतना ही बड़ा कल्याण करने लगेगा। अतः बड़े धीरज से काम करना होगा, बड़े धीरज से।

साधक को एक बात और समझ लेनी होती है कि काम मुझे स्वयं करना पड़ेगा, मेरी जिम्मेदारी है। यह कोई अहंकार की बात नहीं है। कभी-कभी भारत से लुप्त हुई इस विपश्यना विद्या को भली-भांति न समझने के कारण, नासमझी से कुछ लोग आलोचना कर देते हैं कि मैं अपने आपको मुक्त करूंगा! मैं अपना मैल निकालूंगा! तो यह तो अहंकार बढ़ाने की बात हुई? अरे, नहीं भाई, नहीं। यह साधना तो हमें उस अवस्था तक पहुँचा देगी जहां आत्मभाव सारा पिघल जायगा। अनात्मभाव ही अनात्मभाव। 'मैं' नहीं, 'मेरा' नहीं। अहंकार, ममंकार सारा समाप्त हो जायगा। तो अहंकार की बात नहीं, बल्कि जिम्मेदारी की बात है। रोज सुबह नहाते हो ना? क्यों नहाते हो? शरीर मैला हो गया। मैं जिम्मेदार हूं, मैंने अपना शरीर मैला किया। इसकी सफाई करने का काम मुझे करना होगा। कोई दूसरा क्यों सफाई करे? रोज स्वयं नहाता हूं ना? और नहाते हुए अहंकार तो नहीं जगाता। देख, मैं अपने शरीर को रोज साफ करने वाला! कहां अहंकार जगाता है? तेरी जिम्मेदारी है। मैला हो गया तो रोगी हो गया। इसे निरोग करना है, मैं साफ करता हूं।

ठीक इसी प्रकार मन मैला हो गया। मन मैला किसने किया? मैंने किया। अपनी अज्ञान अवस्था में किया। अपनी अबोध अवस्था में किया। अपनी नासमझी से किया। कर लिया, मैला हो गया। अब इसका मैल उतारने का काम भी मेरा है, मेरी जिम्मेदारी है। मुझे ही करना पड़ेगा।

जब तक कोई बेचारा इस भ्रम में पड़ा रहता है कि मैं तो बड़ा गया-गुजरा, मैं तो बड़ा पतित, मैं तो बड़ा बलहीन! अरे, मैं अपने आपको कैसे मुक्त कर सकता हूं? किसी की कृपा हो जायगी। किसी की अनुकंपा हो जायगी और वह मुझे कृपा करके तार देगा। तो भाई, सोचना चाहिए ना! वह तारने वाला तुझे ही क्यों तार देगा रे! तुझमें क्या सुर्खाब के पर लगे हैं कि तुझे तार देगा! क्योंकि तू बहुत झूठी प्रशंसा करने में, झूठी खुशामद करने में माहिर हो गया इसलिए तुझे तार देगा! अरे, सोच के देख भाई! तारने वाला तुझे ही क्यों तारे! सारा संसार कितना दुखियारा है? नहीं तारता ना? तो स्पष्ट है, हर व्यक्ति को स्वयं तरना होगा। हर व्यक्ति को अपने विकारों को स्वयं दूर करना पड़ेगा। हर व्यक्ति ने अपने भीतर स्वयं गांठें बांधी हैं और स्वयं खोलनी पड़ेगी।

कोई बड़े प्यार से हमें रास्ता बता देगा। जो इस रास्ते पर चल कर मुक्त अवस्था पर पहुँचा है, वह रास्ता बता देगा। चलना तो हमें ही पड़ेगा, कदम-कदम पूरा रास्ता हमें स्वयं चल के पार करना पड़ेगा। कोई बड़े प्यार से प्रारंभिक अवस्थाओं में कहेगा, अच्छा, मेरी अंगुली पकड़ के चल। तो बच्चे की तरह साथ-साथ थोड़ा चलेगा, पर चलना तो स्वयं ही है। कोई कंधे पर उठा करके हमें अंतिम लक्ष्य तक पहुँचा देगा, इस भ्रांति से जितनी जल्दी दूर हो जायँ, उतना अच्छा। अंतर्मन की गहराइयों की गांठें हमने बांधी। कौन-सी अदृश्य शक्ति को पड़ी थी कि दुनिया के सारे प्राणियों के मन में विकार पैदा कर दे। दुनिया के सारे प्राणियों के मन में गांठें बांध दे। दुनिया के सारे प्राणियों को दुखियारा कर दे। अरे, कौन ऐसा करेगा? क्यों करेगा? जब गांठें हमने बांधी, विकार हमने संचित किये तो खोलना हमें पड़ेगा। अपने विकारों की सफाई हमें करनी पड़ेगी। कोई रास्ता बताएगा। बड़े प्यार से बताएगा।

भगवान बुद्ध कहते हैं –**"तुम्हेहि किच्चं आतप्पं, अक्खातारो तथागता"** –काम तुम्हें करना पड़ेगा, तपना तुम्हें पड़ेगा। कोई तथागत होगा तो मार्ग आख्यात कर देगा। मार्ग दिखा देगा क्योंकि स्वयं इस मार्ग पर चला है। तथागत याने तथता के सहारे, सत्य के सहारे चलते-चलते परम सत्य तक पहुँच गया। तथता के सहारे

चलते-चलते तथागत बन गया, करुणासे भर गया। अब बड़े प्यार से लोगों को बतायेगा – तेरी जिम्मेदारी है भाई, चलना तुझे पड़ेगा, चलना तुझे पड़ेगा। यह बात जिस व्यक्ति के जितनी जल्दी समझ में आ जाती है, उसका भाग्य खुल जाता है। मुक्ति का रास्ता प्राप्त हो जाता है। जब तक इस आशा में बैठे रहता है कि मैं तो बड़ा गया-गुजरा, कोईऔर तार देगा, कोईऔर तार देगा, किसीकी कृपा हो जायगी। तो भाई, यह रास्ता ऐसे चिंतन के अनुकूल नहीं। स्वयं चलूंगा। कठिनाइयां आयेंगी, गिर पड़ूंगा। घुटने झाड़ करके फिर खड़ा हो जाऊंगा। फिर चलूंगा। यों चलते-चलते मुक्त अवस्था तक पहुँचना है।

भगवान बुद्ध के जीवन काल की एक घटना – उन दिनों वे श्रावस्ती में रहते थे जो उन दिनों के भारत की सबसे बड़ी आबादी वाली नगरी, कोशल प्रदेश की राजनगरी। वहां उनका ध्यान केंद्र। अनेक भिक्षु, भिक्षुणियां और नगर से गृहस्थ पुरुष, नारियां आकर भगवान के प्रवचन सुनें, उनका निर्देश सुनें और वहां ध्यान सीखें। भगवान प्रवचन करते।कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो केवल प्रवचनों का मोद लेते हैं। काम-वाम नहीं करते।ऐसा ही एक व्यक्ति एक दिन जरा जल्दी आ गया। उस वक्त भीड़-भाड़ नहीं थी, कोई नहीं था। भगवान अकेले बैठे थे। बड़ा प्रसन्न हुआ। महाराज, एक प्रश्न बार-बार, बार-बार मेरे मन में उठता है और लोग होते हैं तो संकोच होता है, कैसे पूछूं। अच्छा हुआ, आज आप अकेले हैं। आज्ञा दें तो पूछ लूं? भगवान ने कहा कि अरे, धर्म के क्षेत्र में कोई शंका रखनी नहीं चाहिए। कोई शंका है तो उसका निवारण कर लेना चाहिए। पूछ, तेरा क्या प्रश्न है? कहता है, महाराज! इतने लोग आपके पास आते हैं। मैं देखता हूं, इनमें से कोई-कोईतो सचमुच मुक्त हो गया। एकदम मुक्त हो गया। अरहंत हो गया। जीवन्मुक्त हो गया। उनमें से कईऐसे हैं जिनके जीवन में बड़ा परिवर्तन आ गया, बड़ा सुधार हुआ। पूरी तरह मुक्त नहीं हुए अभी। और महाराज, कुछऐसे भी हैं, जैसे मैं हूं। कोईफर्क नहीं पड़ा महाराज! वैसे का वैसा। तो ऐसा क्यों होता है, महाराज? आप जैसे महाकारुणिक के पास कोई आये। आप जैसे महान शक्तिशाली के पास कोईआये। आपकी शरण आये और कोरा रह जाय। आपकी शरण आये और अधूरा रह जाय। यह कैसी बात? आप अपना सारा बल लगा करके ,अपनी सारी करुणा के बल पर हम सबको तार क्यों नहीं देते?

भगवान मुस्कराये।अरे, यही बात तो रोज समझाते हैं पर कोई समझना ही नहीं चाहे तो क्या करें? तो फिर समझाने की कोशिश की। उनके समझाने के अलग-अलग तरीके थे। कभी-कभीप्रश्न पूछने वाले को प्रति-प्रश्न करके ही समझाते थे। तो इससे भी प्रति-प्रश्न किया।अरे भाई, कहां के रहने वाले हो? महाराज, यहीं, इस श्रावस्ती का।अरे, नहीं, तेरा चेहरा-मोहरा कहता है, तेरी जुबान कहती है, तू यहां का नहीं। तू किसी और प्रदेश का, यहां आकर के बस गया है। यह तो ठीक कहा महाराज, मैं वैसे तो मगध का हूं। राजगिरि का हूं। बरसों से यहां आकर के बस गया। अच्छा, यहां आकर के बस गया तो अब मगध से तेरे संबंध टूट गये सारे? राजगिरि से तेरा आना-जाना नहीं होता? महाराज, अभी तो हमारे परिवार के लोग वहां हैं। हमारे अनेक संबंधी वहां हैं। हमारा व्यापार वहां है। बहुत बार जाना होता है महाराज! श्रावस्ती से राजगिरि, राजगिरि से श्रावस्ती बहुत बार आता-जाता हूं। इतनी बार आते-जाते हो तो यह रास्ता तुम खूब अच्छी तरह जान गये होगे? अरे, महाराज, क्या कहना? इतनी बार चला हूं। खूब जान गया। तो एक बात और बताओ, इस नगर में बसे इतने बरस हो गये, अनेक मित्र हो गये होंगे तुम्हारे। उनमें से कुछ अंतरंग मित्र भी हो गये होंगे। उनमें से कोई इस बात को भी जानता होगा कि तुम मूलत: तो राजगिरि के रहने वाले हो और यह भी जानता होगा कि यहां से राजगिरि, राजगिरि से यहां बार-बार आते-जाते हो। यह भी जानता होगा कि तुम्हें यह रास्ता बहुत अच्छी तरह मालूम है? महाराज, कईलोग ऐसे हैं जो खूब जानते हैं इस बात को।उनमें से कोई-कोई कभी-कभी तुम्हें पूछता होगा कि बताओ भाई, यह श्रावस्ती से राजगिरि का रास्ता कैसा है? तो तुम छिपाते हो कि बता देते हो? महाराज, इसमें छिपाने की क्या बात? बड़े प्यार से समझा देता हूं, ऐसा रास्ता है। यहां से पूर्व की ओर जाओ, वाराणसी आयेगी और आगे बढ़ते जाओ, यों बढ़ो, यों बढ़ो, गया आयेगी, फिर आगे चलो। इस तरफ बढ़ो, उस तरफ बढ़ो, राजगिरि आ जायेगी। तो बताओ, जिस-जिस को तूने यह समझाया, वह तो राजगिरि पहुँच गया होगा?

अरे महाराज, कैसे पहुँच गया होगा? कोई चला होगा तो न पहुँच गया होगा? तो समझ भाई, मैं भी यही कहता हूं। इतने लोग मेरे पास आते हैं, ये खूब जानते हैं कि इस आदमी को यहां से मुक्ति तक का रास्ता खूब मालूम है। क्योंकि खूब चला है इस पर। तो बेचारे पूछते हैं। मैं क्या छिपाऊं? बड़े प्यार से उन्हें समझा देता हूं, यह रास्ता है। ऐसे चलो। ऐसे चलो। रास्ते में यह स्टेशन आयेगी। ऐसे अनुभव होंगे। आगे यह स्टेशन आयेगी, ऐसे अनुभव होंगे। यों होते-होते मुक्त अवस्था तक पहुँच जाओगे। इंद्रियातीत परम सत्य का साक्षात्कार कर लोगे। खूब समझा देता हूं। पर कोईसुन ले और सुन करके बड़े प्रसन्न चित्त से तीन बार झुक करके कहे –साधु, साधु, साधु! महाराज, बहुत बढ़िया समझाया आपने। लेकिन चलता नहीं एक कदम।तो कैसे पहुँच जायगा रे? और कोई चलने लगा। दस कदम चला तो अपने लक्ष्य के दस कदम नजदीक पहुँच गया। सौ कदम चला तो सौ कदम नजदीक पहुँच गया और कदम-कदम सारा रास्ता माप लिया तो लक्ष्य तक पहुँच ही गया ना। चलना तो स्वयं ही पड़ेगा।

जो व्यक्ति इस सच्चाई को जितनी जल्दी समझ जाता है कि सारा रास्ता मुझे तय करना है। जो मैल मैंने अंदर इकट्ठे किये हैं, उनको मुझे निकालना है। भीतर जो गांठें बांधी हैं, उनको मुझे खोलना है। यह तरीका मिल गया। यह रास्ता मिल गया। यह विधि मिल गयी, यह साधना मिल गयी। अब तो काम ही करना है, काम ही करना है। जो-जो मुक्ति के मार्ग पर चलने लगे यानी शुद्ध धर्म के मार्ग पर चलने लगे, वे चित्त विशुद्धि के मार्ग पर चलने लगे, विमुक्ति के मार्ग पर चलने लगे। मंगल होता है, बड़ा मंगल होता है। कल्याण होता है, बड़ा कल्याण होता है। स्वस्ति मुक्ति होती है, बड़ी स्वस्ति मुक्ति होती है। धर्म के पथ पर, शुद्ध धर्म के पथ पर जो चले उसका मंगल ही मंगल। कल्याण ही कल्याण। स्वस्ति ही स्वस्ति। मुक्ति ही मुक्ति।